International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 1053-1056

प्रेमचन्द साहित्य में गांधी जी के आदर्श

डॉ. अर्चना सिंह
पूर्व शोधछात्रा, मध्य एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

सरलता, सौजन्यता व उदारता के मूर्ति प्रेमचन्द का जन्म, बनारस से आजमगढ़ जाने वाली सड़क पर शहर से करीब 4.5 मील दूर एक छोटा सा गाँव है लमही, 15 बीस घर कुर्मियों के, दो एक कुम्हार, एकाध ठाकुर, तीन चार मुसलमान और नौ–दस घर कायस्थों के कुल आबादी[1] वाले गाँव में पिता अजायब राय माता आनन्दी से 31 जुलाई 1880 को हुआ। प्रेमचन्द के बचपन का नामकरण पिता द्वारा मुंशी धनपत राय व चाचा द्वारा मुंशी नवाब राय किया गया था।[2] प्रेमचन्द के परिवार में उनके पूर्व कोई उच्च शिक्षा से जुड़ा नहीं था और ना ही लेखक रूप में स्थापित था। यद्यपि अमृतराय प्रेमचन्द के नाना के बारे में लिखते हैं कि वह साहित्यिक रूचि के आदमी थे और कुछ किताबें भी लिखीं जिन्हें देखना दुनिया को नसीब न हुआ।[3]

प्रेमचन्द 8 साल के थे जब उनकी माता का देहान्त हुआ। इस घटना ने प्रेमचन्द को झिझोड़ कर रख दिया। वे एकान्त में बैठकर रोते थे।[4] प्रेमचन्द के पिता की दूसरी शादी कर ली। विमाता से प्रेमचन्द का तालमेल न रहा फिर भी पिता की मृत्यु के पश्चात् वह माता का आर्थिक सहयोग करते रहे। समाज की गरीबी, अभाव, शोषण, उत्पीड़न जैसी जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियाँ प्रेमचन्द को साहित्य की ओर रूझान को रोक न सकी और आगे चलकर प्रेमचन्द की रूचि तिलस्म और ऐयारी की पुस्तकों के अध्ययन में बदल गई और उन्होंने बहुत ही कम समय में रेनाल्ड मिस्ट्रीज ऑफ कोर्ट आफ लन्दन की 25 किताबों के उर्दू तजुर्मे, मौलाना सज्जाद हुसैन की हास्य कृतियाँ आदि को पढ़ा लेकिन प्रेमचन्द को अपनी लेखन शक्ति का एहसास बचपन में तब हुआ जब उन्होंने अपने एक रिश्ते के मामा को उनका कच्चा चिट्ठा नाटक के रूप में लिखकर उन्हें भागने के लिये विवश किया। अमृतराय लिखते हैं ''नवाब तब तक शरीर से दुर्बल थे और शायद पहली बार उन्हें अपने भीतर की इस नयी शक्ति की चेतना हुई जो मारपीट कर सकने से कहीं ज्यादा भयंकर थी जो काम लाठी से न हो सकती थी वो काम कलम कर सकती थी।''[5]

मुंशी जी की नियुक्ति 02 जुलाई 1900 को बहराइच जिला स्कूल में 5वें मास्टर पद पर हुई। वेतन 20 रू0 महीना सरकारी नौकरी का सिलसिला शुरू हुआ। सरकारी पद पर कार्य करते हुये वे विभिन्न क्षेत्रों के जीवन शैली व उनसे जुड़ी समस्याओं को नजदीक से देखा और निश्चय किया कि मैं अपने किस्से कहानियों से लोगों को उनके समाज के असली रूप से उनके आँखों के सामने लाऊँगा।[6]

प्रेमचन्द ने असरारे–मआविद (देव स्थान का रहस्य) व प्रेमा उपन्यास लिखा। उनकी पहली कहानी 'सोजे वतन' की भूमिका में ही लिखा है कि हर एक कौम का साहित्य अपने जमाने की सच्ची तश्वीर होती है ..... बंगाल के विभाजन ने लोगों के हृदयों में विद्रोह का भाव भर दिया है। ये विचार साहित्य को प्रभावित किये बिना कैसे रह सकता है। हमारे मुल्क में ऐसी किताबों की सख्त जरूरत है जो नस्ल जिगर पर हुस्बे वतन (देश प्रेम) की अजमत का नशा जगाए''[7] इस कहानी संग्रह से समकालीन प्रशासन काफी उद्वेलित हुआ।

1901 में जब प्रेमचन्द ने उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया उस वक्त समाज सुधार आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अंग था। राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के साथ–साथ समाज सुधार आन्दोलन भी हुआ करता था। ये समाज सुधारक रिफार्मिस्ट पार्टी कहलाते थे। इनके नेता गोविन्द रानाडे, गोपाल गोखले उदारवादी नेता थे जो साथ ही साथ कांग्रेस के नेता भी थे। उपन्यासकार प्रेमचन्द भी इस रिफार्मिस्ट पार्टी के समर्थक बन जाते हैं।[8] इस तरह शुरूआती उपन्यासों में समाज सुधार को प्रेमचन्द ने ध्यान रखा है। 'देवस्थान का रहस्य (असरारे–मआविद) महन्तों के काले कारनामे, विधवा विवाह पर 'प्रेमा' उपन्यास लिखे। अयोध्या सिंह भी स्वीकार करते हैं कि उनका प्रथम कहानी संग्रह जो 1908 में प्रकाशित हुआ अपनी मातृभूमि की सेवा में अर्पित प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति है। सांसारिक प्रेम और देश प्रेम में देश प्रेम का पलड़ा भारी होता है। इस तरह प्रेमचन्द की आरम्भिक रचनाएं बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (वंदेमातरम्) भारतेन्दु हरिश्चन्द (भारत दुर्दशा) अल्ताफ हुसैन हाली (हुब्बे वतन) की परम्परा को अधिक सशक्तता के साथ आगे बढ़ाने का प्रयास है।[9]

गाँधीजी को अपनी विचारधारा निर्मित करने में जिन विचार सरणियों को मुख्य माना जाता है उनमें टालस्टॉय भी है। यह अजब संयोग ही है कि प्रेमचन्द न केवल टालस्टॉय से प्रभावित हुये। वरन् उनका अनुवाद भी किया। सत्य अहिंसा–अपरिग्रह के जो आदर्श गाँधीजी देश के सामने रख रहे थे वे समग्रतः उनके अपने मन के थे। क्योंकि जिस रास्ते पर चलकर गाँधीजी ने उन्हें पाया था वह बहुत कुछ उसी रास्ते पर चलकर प्रेमचन्द उन्हें पा चुके थे। वैसे प्रेमचन्द अपने शुरूआती दौर में जो विचार प्रकट किये थे वे परवर्ती काल के गाँधीजी के विचार से पूर्णरूप से मेल नहीं रखते थे। नवम्बर–दिसम्बर 1905 में उन्होंने एक लेख गोखले पर लिखा ''कितनी अच्छी बात कही है तिलक ने ''स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे मैं लेकर ही रहूँगा।'' कौन होते हैं आप यह कहने वाले कि हम अपने देश की जिम्मेदारी संभालने के काबिल हुये या नहीं, न होगें तो देखी जायेगी जो पड़ेगी हम पर, भुगत लेगें आपसे कहने न जायेगें ..... तिलक का रास्ता ठीक है ..... आजादी हमेशा लड़कर ली जाती है। भीख मांगने से आजादी नहीं मिला करती।''[10]

इस तरह यह नहीं कहा जा सकता कि प्रेमचन्द आरम्भ से ही गाँधीजी से संयुक्त रचनायें समाज को दे रहे थे। हाँ अमृतराय के इस दृष्टिकोण से सहमत हुआ जा सकता है कि ''गाँधीजी को जिन थोड़े लोगों ने सबसे पहले समझा उनमें प्रेमचन्द एक हैं। बिरवा उनके मन में पहले से लहलहा रहा था। गाँधीजी को उसे रोपना नहीं पड़ा, हाँ सींचा जरूर''[11]

प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का नायक प्रेमशंकर गाँधीजी के अनुरूप ही कार्य करता है। प्रेमशंकर अमेरिका से भारत आये जबकि गाँधीज साउथ अफ्रीका से। प्रेमाशंकर कहते हैं ''मेरा सिद्धान्त है कि मनुष्य अपनी मेहनत की कमाई को अपनी जीवन वृत्ति का आधार बनाये।''[12]

महात्मा गाँधी भूमि उसी की स्वीकर करते हैं जो उसे जोतता है।[13] यद्यपि गाँधीजी को 1931 में गोलमेज ए की संघीय व्यवस्था समिति में भाषण करते हुये कहा था ''न तो कांग्रेस की ही इच्छा है और न इन मूक भिखारियों की इच्छा है कि जमींदार से उसकी भूमि आदि छीन ली जाय किन्तु जमींदारों को उनके न्यासधारियों के रूप से कार्य करना पड़ेगा।[14] प्रेमचन्द ने प्रेमाश्रम में ऐसे किसानों का चित्रण किया है जो प्रशासन के थोड़े से अत्याचार के खिलाफ हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। चराई प्रथा समाप्त करने पर मनोहर स्थानीय प्रशासक गौसखाँ की हत्या कर देता है परन्तु न्यायालय में सभी अभिजन बलराज के विरूद्ध काम करते हैं फलतः बलराज व उसका संघर्ष परास्त हो जाता है। यद्यपि प्रकारान्तर में, इरफान अली, ज्वाला सिंह अभिजात्यवादी नागरिक होने के बावजूद अन्ततः जन के पक्षधर होते हैं तभी जनवाद की जीत होती है। ऐसा करके प्रेमचन्द जैसे अभिजात्य शक्तियों का आह्वान भी करते हैं कि वे जनवादी शक्तियों को प्रेरित करें। यह प्रेमचन्द की शुरूआती सीख है। अपने परवर्ती रचना 'गोदान' में प्रेमचन्द जनवाद के पक्ष में अभिजात्य शक्तियों को नहीं ला पाते फलतः जनशक्ति परास्त हो जाती है। इस तरह प्रेमचन्द जनवद को निरपेक्ष ढंग से चित्रित नहीं कर पाते। उनके अनुसार जनशक्ति की विजय के लिये अभिजात्य शक्तियों का सहयोग आवश्यक है।

महात्मा गाँधी द्वारा जनवरी 1921 में असहयोग आन्दोलन के शुरूआत की घोषणा की गयी। महात्मा गाँधी ने लिखा ''सक्रिय अहिंसा का मतलब है स्वेच्छा से कष्ट सहना। इसका मतलब अन्यायी की इच्छा के आगे दीनतापूर्वक झुक जाना नहीं है। इसका मतलब तो अपनी आत्मा की समस्त शक्ति से अत्याचारी का विरोध करना है।[15]

गाँधी ने असहयोगियों की निम्न विशेषतायें बतलायी हैं ''लोकमत तैयार करना, विरोधियों के दुर्वचन, दुर्व्यवहार सहन करने की शक्ति, कठोर संयमी, असहयोग साधन पर पूर्ण श्रद्धा, फल के प्रति उदासीन, विचार एवं नम्रता''[16]

'रंगभूमि' उपन्यास का रचनाकाल अक्टूबर 1922 से अप्रैल 1929 के मध्य माना जाता है। इस उपन्यास का नायक अंधा भिखारी है जिसका नाम सूरदास है उसके पास थोड़ी जमींन है जिसे प्राप्त करने की कोशिश ने एक अंग्रेज (जनसेवक) को नाको चने चबाना पड़ता है। सूरदास अहिंसक संघर्ष जारी रखता है। अपने लम्बे संघर्ष में वह थकता नहीं। लोग उसके झोपड़े में आग लगा देते हैं। मिठुआ जो उसका दत्तक पुत्र है पूछता है ''दादा हम कहाँ रहेगें। सूरदास दूसरा घर बनायेगें, मिठुआ और कोई फिर आग लगा दे। सूरदास फिर बनायेगें और कोई फिर सौ लाख बार लगा दे तो सूरदास ने उसी सरलता से उत्तर दिया तो हम सौ लाख बार बनायेगें।[17]

इस तरह सूरदास बिना आसक्ति के अपने हक के लिये संघर्ष करने के लिये लोगों का आह्वान करता है। सूरदास को समकालीन न्यास व्यवस्था में भी विश्वास नहीं है। जब उसे सजा होती है तो वह कहता है ''मेरी अपील पंचों से होगी एक आदमी के कहने से मैं अपराधी नहीं हो सकता चाहे वह कितना बड़ा आदमी हो। हाकिम ने सजा दी काट लूँगा, पर पंचो का भी फैसला सुन लेना चाहता हूँ।[18] सूरदास अहिंसा की मान्यता को स्थापित करते हुये कहता है ''सरकार के हाथ में मारने का बल है, हमारे हाथ में और कोई बल नहीं तो मर जाने का बल है।''[19] इस प्रकार ब्रिटिश सत्ता के समक्ष जनता के धैर्य का चित्रण करते हैं और कहते हैं ''क्लार्क को देखो कितनी निदर्यता से लोगों को हंटर मार रहा है किन्तु कोई हटने का नाम नहीं ले लेता जनता का संयम और धैर्य अब अन्तिम बिन्दु तक पहुँच गया है।[20]

असहयोग आन्दोलन वापस जब लिया महात्मा गाँधी ने तो यह एक तरह से यह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की क्षणिक हार थी। सूरदास कहता है ''हम हारे तो क्या मैदान से भागे तो नहीं, धाँधली तो नहीं की, फिर खेलेगें जरा दम तो ले लेने दो। इस उपन्यास के अन्त में प्रेमचन्द कहते हैं कि ''आज मेरे दिल से यह विश्वास उठ गया जो गत 40 वर्षों से जमा हुआ था कि गवर्नमेन्ट हमारे उपर न्याय बल से शासन करना चाहती है। आज उस न्याय बल की कलई खुल गयी है। हमारी आँखों से पर्दा उठ गया है केवल हमको पीसकर तेल निकालने के लिये हमारा अस्तित्व मिटाने के लिये हमारी सभ्यता और हमारे मनमुटाव की हत्या करने के लिये हमारे उपर राज्य किया जा रहा है। मैं रिपन, ह्यूम, बेसेन्ट आदि की कीर्ति का उल्लेख करके उसे निरूत्तर करने की चेष्टा करता था पर अब विदित हो गया कि उद्देश्य सबका एक ही है केवल साधनों का अन्तर है।

कमल किशोर गोयनका लिखते हैं कि ''महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन, औद्योगिक नीति, सत्य, अहिंसा, सविनय अवज्ञा से अन्याय एवं पराधीनता के विरूद्ध संघर्ष स्वराज एवं कृषि संस्कृति की रक्षा आदि विचारों का समाज व साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा उसकी एक झांकी हमें रंगभूमि से प्राप्त होती है। देश की राजनीति में जो कार्य गाँधी ने किया वही कार्य साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द की रंगभूमि ने किया। अपने देश की मिट्टी संस्कार तथा संस्कृति से जुड़ने की जो मानसिक क्रिया 'सोजे वतन' से प्रारम्भ हुई थी उसकी चरम विकसित रूप हमें रंगभूमि में दृष्टिगत होता है।[21]

प्रेमचन्द पर गांधीवाद के प्रभाव का अध्ययन करते समय इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखना चाहिये कि गांव किसान अछूत हिन्दू–मुस्लिम सद्भाव, नारी ये सब प्रेमचन्द के रचना संसार में गाँधीजी के भारत की राजनीति में सक्रिय होने से पहले ही अपनी प्रधान जगह ले चुके थे।[22]

'गबन' प्रेमचन्द का उपन्यास जो अप्रैल 1929 से जुलाई 1930 में रचित है। यह उपन्यास एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो आभूषणों से प्रेम करती है इसी कारण उसके पति को एक गबन करना पड़ता है। वह भागकर कलकत्ता शरण लेता है वहाँ कुछ कार्य करने वालों के खिलाफ गवाही देने के लिये इसलिये तैयार हो जाता है क्योंकि उसके बदले में लाभ का लालच प्रशासन ने दिया था। नायक की पत्नी जालपा अपने पति के इस झूठे कृत्य से सिहर जाती है और पति से तब तक घृणा करती है जब तक वह बयान बदलकर क्रान्तिकारियों को बचा नहीं लेता। अन्ततः नायक का हृदय परिवर्तन राष्ट्रहित में होता है।

इसी प्रकार गबन के पश्चात् कर्मभूमि का उपन्यास का प्रकाशन स्वीकार किया जाता है। इसमें नायक अमरकान्त द्वारा नियमित रूप से चरखा चलाना, स्वदेशी को बढ़ावा देना, शराब को विरोधी आदि क्रिया–कलापों को इसके नायक अमरकान्त द्वारा किया जाता है। कर्मभूमि में प्रेमचन्द नगर एवं ग्राम दोनों ही स्थानों में जाग्रति फैलाने की बात करते हैं। नगर में डाक्टर शांति कुमार एवं सुरवदा कार्य कर रहे हैं तो गांव में अमरकान्त चेतना फैला रहे हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द का दृष्टिकोण अधिक व्यापक दिखाई पड़ता है। पराधीन देश की जनता के सम्मुख जो समस्यायें थी उन्हें लेखक ने लिया है और समाधान प्रस्तुत किया है।[23]

प्रेमचन्द का स्पष्ट मत है कि राजनीतिक आन्दोलन की सफलता के

लिये सामाजिक सुधार अनिवार्य है। स्वराज्य प्राप्ति के लिये सर्वप्रथम जनता में शक्ति उत्पन्न करनी होगी।

प्रेमचन्द का अंतिम पूर्ण उपन्यास गोदान है जो 1936 में प्रकाशित हुआ इसका नायक होरी एक ग्रामीण किसान है जो मृत्युपर्यन्त विभिन्न शोषणों व त्रासदियों का शिकार होता है। प्रेमचन्द को अभी तक जैसे विश्वास था कि समाज के शक्तिशाली अभिजन, किसान, श्रमिक की समस्याओं की मुक्ति के लिये स्वयं पहल करेंगे। इस उपन्यास में यह विश्वास खण्डित होता प्रतीत होता है। यद्यपि इस उपन्यास में स्वराज या राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रत्यक्षतः हवाला नहीं है। गोदान के मुख्य पात्र होरी की संकटापन्न स्थिति का चित्रण करके और उसे शोषण चक्र का शिकार दिखाकर जैसे प्रेमचन्द सभी ऐसी शक्तियों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जो उनके शोषण में भागीदार है या उन्हें मुक्त देखना चाहते हैं साथ ही किसान से मजदूर बनने की त्रासदीपूर्ण गाथा भी गोदान का विषय है।

गाँधीजी आन्दोलन एवं उसके तकनीकी का सुन्दर चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। चौधरी कहता है कि ''तो यह स्वराज्य कैसे मिलेगा? आत्मबल या पुरूषार्थ के मेल से। एक दूसरे से द्वेष करना छोड़ दो, अपने झगड़े आप निपटा लो ..... अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहिनो, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी छोड़ो अपने लड़कों को धर्म कर्म सिखाओ, मेल से रहो बस यही स्वराज्य है जो लोग कहते हैं स्वराज के लिये खून की नदी बहेगी वह पागल हैं उनकी बातों पर ध्यान मत दो।[24]

महात्मा गाँधी 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भी प्रेमचन्द ने सक्रिय सहभागिता अपनी लेखनी के द्वारा दर्शायी और कभी–कभी तो आन्दोलन में भी शरीक हुये। इसी समय उनकी पत्नी शिवरानी ने कई बार जेल यात्रायें भी की। ''जब गाँधी ने नमक सत्याग्रह आरम्भ किया तब प्रेमचन्द स्वयं अमीनाबाग पार्क में स्वयंसेवकों की खादी की धोती व कुर्त्ता पहनाते और आश्वासन देते कि वे स्वयं भी शीघ्र ही उनका अनुसरण करेगें।''[25]

इस समय प्रेमचन्द की कई कहानियों में सविनय आन्दोलन का जीवन्त चित्रण है। 1930 में 'हंस' में प्रकाशित कहानी 'जुलूस' को ही देखिये पूर्ण स्वराज्य का जूलूस निकल रहा था। कुछ बूढ़े कुछ बालक झण्डियाँ लिये वंदेमातरम गाते हुये निकले। ''मैकू जो निम्न वर्ग का प्रतिनिधि है उच्च वर्गों के सहभागी न होने पर कहता है ''बड़े आदमी क्यों जूलूस में आने लगे उन्हें इस राज में कौन आराम नहीं है बंगलो महलों में रहते हैं, मोटरों में घूमते हैं उन्हें कौन तकलीफ है मर तो हम रहे हैं जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं।''[26] इसी प्रकार 'समरयात्रा' कहानी ने भी कांग्रेस सत्याग्रहियों का चित्रण है जो गाँव–गाँव जाकर कार्य करते हैं।

'पत्नी से पति' कहानी में पत्नी–पति को स्वदेशी अपनाने के विवश करती है और जब पत्नी की सक्रिय भागीदारी की वजह से पति सरकारी सेवा से बर्खास्त कर दिया जाता है तो पत्नी कहती है ''मैं तो खुश हूँ कि तुम्हारी बेड़ियाँ कट गई''[27] कहानी 'शराब की दुकान' में शराब पर की गई पिकेटिंग एवं 'मैकू' कहानी में शराब के प्रति हृदय परिवर्तन का चित्रण है क्योंकि कांग्रेस का एक स्वयंसेवक मैकू के थप्पड़ को बिना किसी विरोध के उदारता से सह लेता है :–''कांग्रेस वाले किसी पर हाथ नहीं उठाते चाहे उन्हें कोई मार डाले।''[28] 'जेल' कहानी में प्रेमचन्द सत्याग्रहियों की पुलिस मुठभेड़ का सजीव चित्रण किया है। इसी तरह कहानी 'सुहाग की साड़ी' विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार एवं उसकी होली जलाने का मार्मिक चित्रण है।

प्रेमचन्द के साहित्य में गांधीवादी मान्यताओं के प्रतिफलन की समीक्षा करते हुये हमें ध्यान रखना चाहिये कि गांधी व्यवहारिक राजनीति के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं जबकि प्रेमचन्द लेखन के द्वारा उसे दिशा दे रहे हैं। अतः दोनों के शैली में विचलन की संभावना निरन्तर बनी रहती है क्योकि साहित्य रचना के समय जन रूचि का ध्यान रखना आवश्यक था और प्रेमचन्द ऐसे समय में रचना धर्मिता से जुड़े थे जब उन्हें एक नई भावभूमि के साहित्य के लिये पाठक भी तैयार करना था। गाँधीजी की अहिंसा सैद्धान्ति रूप में जो होती थी निश्चित रूप से वह व्यवहार में उसी रूप में सामने नहीं आती। जबकि प्रेमचन्द यथार्थ एवं व्यवहारिक लेखन से जुड़े हैं। डॉ0 वी0 पट्टाभि सीतारमैया लिखते हैं कि ''भारत की इज्जत की रक्षा के लिये गाँधीजी ने कहा मैं यह अधिक श्रेयस्कर समझूँगा कि हमारा देश शस्त्र का सहारा ले बजाय इसके वह कायरों की तरह निस्सहाय होकर अपनी बेइज्जती होते हुये देखे।[29] इस तरह प्रेमचन्द के साहित्य में व गाँधीजी के अन्दोलन के व्यवहारिक रूप में जहाँ सत्याग्रह ने हिंसक रूप धारण किया वहाँ यह तथ्य कार्य कर रहा था।

प्रेमचन्द गांधीवाद में आस्था इसलिये भी रखते थे कि उन्हें किसान एवं मजदूरों की मुक्ति उनकी विचारधारा एवं आन्दोलन में दिखाई पड़ती है। प्रेमचन्द ने हंस में लिखा ''महात्मा गांधी ने स्पष्ट कह दिया है कि हम पद के लिये धन के लिये स्वराज नहीं चाहते हम स्वराज चाहते हैं उन गूँगे बेजबान आदमियों के लिये जो दिन–दिन दरिद्र होते जा रहे हैं। हमारा तो उद्देश्य तभी पूरा होगा जब हमारी दरिद्र क्षुधित, वस्त्रहीन जतना की दशा सुधरेगी।[30] इन्हीं सब कारणों से प्रेमचन्द ने जो कि स्वयं किसानों, मजदूरों गांव उपेक्षितों पीड़ितों के रचनाकार थे। गांधीवाद में अपनी आस्था दर्शाई पर पूर्ण समर्पण के साथ नहीं वे समानान्तर में गांधीवादी विचारधारा से अलग भी कार्य करते रहे। संक्षेप में प्रेमचन्द ने अपने साहित्यों में समकालीन समाज की परिस्थितियों, समस्याओं को अपनी लेखनी का विषय बनाया साथ ही लेखन शक्ति के माध्यम से तत्कालीन समाज में राष्ट्रीयता की भावना को भी संचारित करने का प्रयास किया।

सन्दर्भ

1. अमृतराय, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962, पृ0 5
2. शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर में, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1983 पृ0 1
3. अमृतराय, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962, पृ0 5
4. शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर में, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1983 पृ0 3
5. अमृतराय, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962, पृ0 30
6. अमृतराय, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962, पृ0 50
7. कमल किशोर गोयनका, प्रेमचन्द अध्ययन की नई दिशायें, साहित्य निधि, दिल्ली, 1981, पृ0 63
8. चन्द्रबली सिंह (सम्पादक) प्रेमचन्द का एक इतिहास एक वर्तमान, कमल प्रकाशन, कलकत्ता, 1980, पृ0 35
9. अयोध्या सिंह, भारत का राजनीतिक स्वाधीनता आन्दोलन और प्रेमचन्द, प्रेमचन्द एक इतिहास एक वर्तमान सम्पादक चन्द्रबली सिंह, पृ0 34
10. अमृतराय, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962, पृ0 96
11. अमृतराय, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962,

पृ0 226
12. प्रेमाश्रम, प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, 1962, पृ0 163
13. हरिजन मार्च 1946 उद्धृत वी0पी0 वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, आगरा, 1956, पृ0 257
14. यंग इंडिया 2 अक्टूबर 1931 उद्धृत वी0पी0 वर्मा।
15. यंग इंडिया उद्घृत रंगभमि ये आयाम, कमल किशोर गोयनका, नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, 1981, पृ0 14
16. नवजीवन, 1934, पृ0 15
17. रंगभूमि प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1993, पृ0 118
18. वही, पृ0 314
19. वहीं, पृ0 419
20. वही, पृ0 445
21. कमल किशोर गोयनका, भूमिका रंगभूमिक के नये आयाम, पृ0 5
22. शिव प्रसाद मिश्र, प्रेमचन्द विरासत का सवाल सर्वोदय प्रकाशन, 1992, पृ0 12
23. नन्द दुलारे वाजपेई, प्रेमचन्द का साहित्यक विवेचन, हिन्दी, जालन्धर, 1956, पृ0 117
24. लांगडॉर, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड–12, पृ0 276–277
25. मदन गोपाल, अमर कथाकार प्रेमचन्द, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1981, पृ0 84
26. जूलूस हंस मार्च 1930, पृ0 42
27. पत्नी से पति, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड–14, पृ0 341
28. शराब की दुकान, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड–14, पृ0 379
29. डा0 वी0 पट्टाभि सीतारमैया, गांधी और गांधीवाद, हिन्दी अनुवाद, आगरा, 1957, पृ0 47
30. हंस मार्च 1930, पृ0 67–68